P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-I*September-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

बौद्ध संघ में भिक्षुणियां : एक पर्यालोचन

आर.पी. सिंह
सहायक प्राध्यापक,
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
म.प्र.

सारांश

बुद्ध ने अनुभव किया कि बौद्ध संघ में भिक्षुणियों की उपस्थिति के फलस्वरूप कतिपय भिक्षु संघ के उच्च नैतिक आदर्शो से च्युत हो जायेंगे। अतः वे भिक्षुणी संघ की स्थापना के विरूद्ध थे। नारी को प्रब्रज्या के अधिकार से वंचित रखने का एक प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि पुरूष अपनी दुर्बलताओं का आरोप स्त्री के दुश्चारित्र्य पर करता रहा है। अतः संन्यासी को नारी से दूर रहकर लक्ष्य सिद्धि में सफलता दिखती है।[1] वानप्रस्थ आश्रम में नारी को अरण्यवास की अनुमति प्रदान की गयी थी, परंतु इसकी परिस्थितियां अलग थी। यौवन के अवसान पर जब मनुष्य की वासनाएँ प्रसुप्त होने लगती हैं तब गृहस्थ वानप्रस्थी बनता था और पति–पत्नी साथ–साथ निवृत्तिमार्गी बनते थे। दूसरी ओर बौद्ध संघ में व्यक्ति पन्द्रह वर्ष की आयु में ही श्रामणेर बन जाता था। इस अपरिपक्व वय मे स्त्री सानिन्ध्य से व्यक्ति की दलित वासनाओं के उत्पन्न होने की संभावनाएँ थी। अतः भिक्षु–भिक्षुणी सम्बन्ध कलुषित न हों, इस विचार से यह नियम बनाया गया कि यदि कोई श्रामणेर किसी भिक्षुणी के संग सहवास करेगा तो उसे भिक्षु संघ से निष्कासित कर दिया जायेगा।[2] स्त्रियों को संन्यास जीवन से दूर रखने का एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि पितृप्रधान कुटुम्ब व्यवस्था में स्त्री का स्थान पारिवारिक सम्पत्ति के एक अंग सदृश था। नारी स्वातन्त्र्य का विरोध भी समाज में दिखायी देता है जिसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" जैसे वाक्यों में देखी जा सकती है। नारी के बाल्यकाल, युवावस्था एवं वार्द्धक्य मे पिता, पति एवं पुत्र उसका संरक्षक हो जाता था। अतः प्राचीन भारतीय धार्मिक–सामाजिक वातावरण नारी के प्रव्रजित होने के विरूद्ध था।[3]

धार्मिक तथा सामाजिक परम्पराओं के अतिरिक्त कतिपय व्यावहारिक समस्याओं के कारण भी महात्मा बुद्ध नारी को प्रब्रज्या देने के पक्ष में नहीं थे। यदि कोई नारी वन में अरक्षित रहती तो उसे समाज विरोधी तत्वों का शिकार होना पडता। विनयपिटक में इस प्रकार के उदाहरण मिलते है, जब वन में अकेली पाकर भिक्षुणियों संग भ्रष्ट भिक्षुओं एवं दुष्टों द्वारा दुर्व्यव्यवहार किया गया। परंतु बुद्ध को तो कठिन समस्या का सामना करना पड़ा। यदि वे स्त्रियों को भिक्षुणी धर्म में दीक्षित कर साधना हेतु वन में भेजते, तो उनको गुंडे तथा दस्युओं के चंगुल मे फसने की संभावना रहती। यदि भिक्षुणियों को भिक्षुओं के साथ रहने की अनुमति प्रदान कर दी जाती, तो उभयपक्ष के पथभ्रष्ट होने का भय बना रहता। अतः जब स्त्रियों को प्रब्रज्या ग्रहण करने का अधिकार मिल गया और वे भिक्षुणियॉ बनने लगी, तब यह व्यवस्था की गयी कि न तो वे एकाकी आवास के बाहर जाये न ही किसी नदी की ओर और न रात्रि मे एकाकी वास करें या संघ के बाहर जाएँ।[4] यह भिक्षुणियों की सुरक्षा के प्रति महात्मा बुद्ध के संवेदनशील होने का अकाट्य प्रमाण है।

एक बार जब स्त्रियों का संघ में प्रवेश हो गया तब संघ में एक साथ रहते हुए भिक्षु और भिक्षुणियों मे पारस्परिक संबंध एवं परिचय का होना स्वाभाविक ही था। इन सम्बन्धों एवं मेलजोल प्रसंगों के परिणामस्वरूप चारित्रिक पतन की संभावना भी हो सकती थी। अतः संघ मे उनके पारस्परिक व्यवहार को जहॉ तक सम्भव हो सका, कम करने की कोशिश की गई। इस सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही विस्तृत नियमों की रचना की गई थी।

मुख्य शब्द : भिक्षुणी, भिक्षु, उपासक, उपासिका, प्रव्रज्या, अरण्यवास, निवृत्तिमार्ग, अष्टगुरूधर्म, उपसंपन्न.

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय समाज मे जैन एवं बौद्ध धर्म का अत्यन्त महत्व रहा है। इन दोनों ही धर्मो के विकास में इनके सांगठनिक स्वरूप का महत्वपूर्ण योगदान था। जैन एवं बौद्ध दोनों संघ भिक्षु–भिक्षुणी, उपासक–उपासिका ऐसे चार भागों में विभाजित थे, परन्तु संघ के मूलस्तम्भ भिक्षु–भिक्षुणी ही थे। यहाँ हम बौद्ध संघ

में भिक्षु–भिक्षुणी सम्बन्धों का परीक्षण तो करेंगे ही, साथ ही संघ में भिक्षुणियों की स्थिति का भी अवलोकन करेंगे। इस परीक्षण और अवलोकन के पूर्व हमें बौद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश सम्बन्धी परिदृश्य पर भी दृष्टिपात करना समीचीन प्रतीत हो रहा है। जैसा कि हम सभी जानते है कि महात्मा बुद्ध ने संघ में स्त्रियों को प्रवेश आनन्द के कहने पर दिया था। यहाँ हमे महात्मा बुद्ध की स्त्रियों को संघ प्रवेश देने की हिचकिचाहट को देखना न्यायोचित प्रतीत होता है साथ ही तद्युगीन परिस्थिति का आंकलन करना भी आवश्यक लगता है। नारी को प्रवज्या का अधिकार प्रदान करने के विषय में न केवल महात्मा बुद्ध अपितु विश्व के अधिकांश धर्म प्रमुख इसके विरूद्ध थे। जिन धार्मिक संस्थाओं में वैराग्य की प्रमुखता है वहाँ स्त्री की उपस्थिति से पुरूष की आध्यात्मिक साधना में व्यवधान होने की संभावना की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

उद्देश्य

बौद्ध संघ मे देखे तो हमें भिक्षुओं की तुलना मे भिक्षुणियों की स्थिति निम्न दिखाई देती है। यह बुद्ध प्रतिपादित अष्टगुरूधर्मो से ही स्पष्ट हो जाता है। प्रथम अष्टगुरूधर्म नियम के अनुसार सौ वर्ष की उपसम्पन्न भिक्षुणी को संद्यः उपसम्पन्न भिक्षु को अभिवादन करना, अंजलि जोड़ना तथा उसके सम्मान में खड़ा होना पड़ता था।[5] इसका स्पष्ट संकेत यह है कि योग्यता में भिक्षुणी कितना भी ज्येष्ठ क्यों न हो उसे प्रत्येक दशा में भिक्षु का सम्मान करना पड़ता था। इसके विपरित भिक्षु किसी भी भिक्षुणी के सम्मान मे न तो खड़ा हो सकता था और न ही अंजली जोड़ता था। यहॉ हम देखते है कि योग्यता को बिल्कुल नकार दिया गया था और लिंग आधारित ज्येष्ठता का सिद्धान्त लागू था। यहाँ तक कि प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था मे जो ज्येष्ठजनों के विरूद्ध सम्मान प्रदर्शन की परम्परा प्रचलित थी उसका भी हमें यहॉ बिलोप दिखाई देता है। बौद्ध संघ में इस अनुचित नियम के विरोध मे भिक्षुणियों की प्रतिकूल प्रतिक्रिया के भी दर्शन होते है। अष्टगुरूधर्म स्वीकार कर लेने के उपरान्त महाप्रजापति गौतमी ने बुद्ध से यह अनुमति चाही थी कि भिक्षु–भिक्षुणियों के मध्य अभिवादन–अभ्युत्थान तथा समीची कर्म (कुशल क्षेम पूछना) ज्येष्ठता के अनुसार हो, लिंग के अनुसार नहीं। गौतमी द्वारा उठाया गया यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण था, जिसका उचित समाधान होता तो उसका अत्यन्त दूरगामी प्रभाव पड़ता। लेकिन बुद्ध ने अपनी क्षीरदायिका मौसी के इस तर्क को स्वीकार नहीं किया तथा कठोरतापूर्वक यह नियम बनाया कि अभिवादन–वन्दना आदि भिक्षुणियों को ही करना चाहिए।[6] कुछ परिस्थितियों मे भिक्षुणियों को भिक्षु संघ के साथ रहना आवश्यक माना गया था। अष्टगुरू धर्म नियम के अनुसार भिक्षुणियों को भिक्षु संघ के साथ ही वर्षावास करने का विधान था। भिक्षुणियों को अकेले यात्रा आदि करना निषिद्ध था। इसके अतिरिक्त भिक्षुणियों को अकरणीय धर्म के माध्यम से अधिक कठोर प्रतिबन्ध मे रखने की कोशिश की गई।

उपर्युक्त नियम नारी प्रकृति को ही ध्यान में रखकर बनाए गये थे तथा उसमे भिक्षुणी की शील सुरक्षा का प्रश्न महत्वपूर्ण था।

भिक्षु–भिक्षुणियों के मध्य अति परिचय बढने से दोषों के उत्पन्न हाने की संभावनाएँ अधिक थी। जिनके निराकरण का प्रयास किया गया था। संघ में एक साथ रहते हुए यह कदापि संभव नहीं था कि भिक्षु–भिक्षुणी मिल ही न सके। संघ के समक्ष भिक्षुणियों की शील रक्षा का प्रश्न भी था जिसके कारण उन्हे सर्वथा अकेला नहीं छोड़ा जा सकता था। अतः उनके मध्य पारस्परिक सम्बन्ध होना स्वाभाविक था। परन्तु यह ध्यान दिया गया था कि भिक्षु–भिक्षुणी सम्बन्ध इतने घनिष्ठ न हो जाये कि नियमों की अवहेलना होने लगे। संघ की मर्यादा के अन्दर ही उन्हें एक दूसरे से मिलने की अनुमति दी गई थी। किन्तु फिर भी इसके उलंघन बौद्ध साहित्य में प्राप्त होते है। जिसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नहीं प्रतीत हो रहा है।

यहाँ तक कि हम अभिलेखों में भी भिक्षु–भिक्षुणियों को साथ–साथ दान देते हुए पाते है। अमरावती से प्राप्त एक बौद्ध अभिलेख (Amravati Buddhist Sculptures Inscription) में एक चेतियवंदक भिक्षु–भिक्षुणी (जो गृहस्थ जीवन में भाई–बहन थे) द्वारा एक साथ दान देने का उल्लेख है। यहाँ हम देखते हैं कि प्रव्रज्या ग्रहण के पश्चात भी भाई–बहन की घनिष्ठता एकदम से समाप्त नहीं हो जाती थी। इसमें अतिरिक्त अन्य इसी प्रकार के उदाहरण अमारावती अभिलेख से ही प्राप्य है।[7] इसी प्रकार का साथ–साथ भिक्षु–भिक्षुणियों के दान देने के उदाहरण कन्हेरी गुफा लेख [8] से भी प्राप्त हुआ है। यहाँ यह भी द्रष्टव्य एवं ध्यातव्य है कि कन्हेरी एवं अमरावती के लेखों में भिक्षुणियों के लिए क्रमशः थेरी एवं भदन्ती शब्द का प्रयोग हुआ है जबकि इसके विपरीत भिक्षुओं के लिए प्रायः प्रत्येक अवसर पर थे रभदन्त, भदन्त अथवा थेर शब्द का प्रयोग हुआ है। एक अन्तर और भी द्रष्टव्य है। भिक्षुओं के लिए अधिकतर थेर भदन्त शब्द एक साथ प्रयुक्त हुआ है। जबकि भिक्षुणियों के लिए ऐसा कहीं नहीं है। उनके लिए थेरी एवं भदन्ती शब्द अलग–अलग ही प्रयुक्त हुए है। अभिलेखों मे प्रयुक्त ये शब्द भिक्षुणी की तुलना मे भिक्षु की श्रेष्ठता का सूचक है। भिक्षुओं की शिष्य भिक्षुणियों हो सकती थी परन्तु भिक्षुणी का शिष्य कोई भी भिक्षु नहीं हो सकता था।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अन्य उल्लेख भी प्राप्त होते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भिक्षु की अपेक्षा भिक्षुणी की स्थिति निम्न थी। बौद्ध धर्म का उच्च पद भिक्षुणियाँ नहीं प्राप्त कर सकती थी। अंगुत्तर निकाय (1/15) के अनुसार इस बात की थोडी भी संभावना नहीं थी कि स्त्रियाँ सम्यक् सम्बुद्ध हो सकती है। इस उच्चपद को केवल पुरूष ही प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार भिक्षुणियों को बुद्ध पद की प्राप्ति की आशा से ही वंचित कर दिया गया था। बुद्ध ने किसी भी भिक्षुणी को इतनी महत्ता नहीं प्रदान की थी जितनी की सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन को। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म की जितनी भी संगीतियाँ हुई सबका अध्यक्ष कोई न कोई

भिक्षु ही हुआ, कोई भी भिक्षुणी अध्यक्ष पद को सुशोभित न कर सकी, यद्यपि ज्ञान एवं विधार्जन के क्षेत्र मे वे भिक्षुओं से किसी भी प्रकार कम नही थी। यहॉ हम शुभा–2 (जीवक के आम्रवन मे रहने वाली)[9] भिक्षुणी के ज्ञान एवं वैराग्य का उदाहरण देना चाहेगे। शुभा के सौन्दर्य से मुग्ध होकर एक चरित्र भ्रष्ट युवक उसे नाना प्रकार के प्रलोभनों से लुभाने का प्रयत्न करता है, साथ ही वह शुभा के अंग–प्रत्यंग की सुन्दता का वर्णन भी करता है जिससे वह आकर्षित है। शुभा ने उसे भोग के दुष्परिणामों से और अपने भिक्षुणी भाव का स्मरण कराया किन्तु धूर्त तो विषयांध हो रहा था। वह शुभा की आँखों की सुन्दरता को देखकर विषयासक्त था। शुभा ने अपनी एक आँख फोड़ ली और उसे युवक को देते हुए कहा–यह ले। यह आँख ही सारे अनर्थ की जड़ है। युवक भय से कंपित हो उठा। उसकी भोग–लालसा न जाने कहाँ चली गयी। ऐसा नहीं है कि शुभा केवल शारीरिक सौन्दर्य की ही स्वामिनी थी अपितु उसकी बौद्धिकता भी अत्यन्त उच्च कोटि की थी। वह कहती है कि स्वर्ग लोक एवं मनुष्य लोक में ऐसा कुछ भी नहीं है। जो मेरे अन्दर राग उत्पन्न कर सकें (थेरी गाथाएँ 385)। शुभा आष्टांगिक मार्ग अनुगामिनी है। वह चित्त नैर्मल्य है वह वेदनाओं से मुक्त है। वह कहती है कि सुन्दर नयी लकड़ी की खूँटियों से बँधी हुई एक सुचित्रित कठपुतली, धागों और तकुओं से कुशलतापूर्वक बौधी हुई नाना प्रकार के सुन्दर नृत्य दिखाती है, किन्तु तकुओं और धागों के हटा लेने पर कठपुतली छिन्न–भिन्न हो कर गिर पड़ती है। यही हाल मनुष्य के शरीर का भी है (थेरीगाथाएँ 391)। यह भी विभिन्न अवयवों एवं क्रिया धर्मो (अवस्थाओं) से संचालित है। यदि ये अवस्थायें उत्पन्न न हो तो इसके भी अवयव छिन्न–भिन्न हो जायेगे। किन्तु इतने उच्च ज्ञान सम्पन्न भिक्षुणियों को भी संघ में उच्च पद नहीं दिया जाता था।

निष्कर्ष

परन्तु उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह धारणा नहीं बना लेनी चाहिए कि बौद्ध भिक्षुणियाँ अत्यन्त निम्न जीवन जीती थी। यद्यपि भिक्षु की तुलना मे उनकी स्थिति निम्न थी, किन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं की वे संघ की एक सम्मानित सदस्य होती थी। ज्ञान के क्षेत्र मे भी वे अग्रणी थी। राजा–महाराजा एवं बड़े राजकीय अधिकारी उनके उपदेशों से लाभान्वित होते थे तथा उनकों प्रणाम एवं अभिनन्दन करना अपना गौरव समझते थे। कोशल नरेश प्रसेनजित द्वारा भिक्षुणी क्षेमा का सम्मानपूर्वक अभिवादन करना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। जिस प्रकार भिक्षु के सम्मान में स्तूप आदि निर्मित हुए उसी प्रकार भिक्षुणिओं के सम्मान में भी कालांतर मे स्तूप आदि निर्मित किये गये। कोशल में महाप्रजाति गौतमी के सम्मानार्थ बने हुए स्तूप एवं उसके निकट विहार का उल्लेख चीनी यात्रियों फाहियान एवं ह्वेनसांग (Buddhist Records of the western world. Vol. I. P. 25) ने किया है।

अतः यह कहा जा सकता है कि भिक्षु की तुलना मे निम्न स्थिति होने के बावजूद बौद्ध संघ में भिक्षुणियों का भी महत्वपूर्ण स्थान था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मदन मोहन सिंह, बुद्धकालीन समाज और धर्म, पटना, 1972, पृ. 187.
2. महावग्ग, 1/60
3. मदन मोहन सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 188
4. भिक्खुणी– पातिमोक्ख–संघदिसेसधम्म।
5. चुल्लवग्ग, पृ. 378
6. अरूण प्रताप सिंह, जैन और बौद्ध भिक्षुणी संघ, वाराणसी, 1986 पृ. 192
7. List of Brahmi Inscriptions. 1262.
8. Ibid. 1006.
9. भरत सिंह उपाध्याय, थेरी गाथाएँ, दिल्ली, 1967, पृ. 116–23.